हिन्दू विधि

प्र०-1 एक वैध हिन्दू विवाह की क्या क्या अनिवार्यताए हैं! किन आधारों पर एक विवाह शुन्य है

उत्तर:- विवाह का प्रथम मुख्य उद्देश्य उन तीन ऋणों , जिनके लिये प्रत्येक हिन्दू दायी होता है , में से एक से मुक्ति पाना था। तीन ऋण-देवऋण , ऋषिऋण और पितृऋण हैं। देवऋण से मुक्ति यज्ञ करने से होती हैं, ऋषिऋण से मुक्ति वेदों का अध्ययन करने से होती है , और पितृऋण से मुक्ति पुत्र उत्पन्न करने से होती है। पुन उत्पन्न करने के लिये विवाह आवश्यक है। विवाह का दूसरा उद्देश्य नरक से उद्धार पाने के लिये हैं। पुत्र का अर्थ नरक से त्राण देने वाले से होता है। पुत्र श्राद्ध इत्यादि कर्मो के द्वारा पिता की आत्मा को नरक से मुक्त कराता है।

विवाह की शर्ते

यह ऊपर ही स्पष्ट किया जा चुका है कि विवाह एक ऐसा संस्कार है जो किसी के लिये भी वर्जित नहीं. था। प्रत्येक व्यक्ति इसका अधिकारी था। यहां हम उन शर्तों का विवेचन करेंगे जिनका विवाह के लिये पालन किया जाना आवश्यक था। इन शर्तो को हम निम्न शीर्षकों में बांटकर उन पर पृथक्-पृथक् विचार करेंगे।

(1) जाति, वर्ण एवं अन्य प्रतिषेध,

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

PGS National College Of Law

(2) आयु,

(3) शारीरिक एवं मानसिक क्षमता।

हिन्द विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 30 द्वारा इसका निरसन कर दिया गया है। विशेष विवाह अधिनियम. 1954 के अनुसार, हिन्दू अन्तर्जातीय विवाह कर सकता है। इस अधिनियम के अधीन होने वाले विवाह में अधिनियम में दी गई शर्तों का पालन आवश्यक है तथा पति और पत्नी के अधिकार तथा कर्त्तव्य इस अधिनियम के द्वारा शासित होंगे। किन्तु इस अधिनियम के अधीन किया गया विवाह सिविल विवाह है।

जाति (Caste)

हिन्दुओं में चार वर्ण होते थे-ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। उनकी पारस्परिक श्रेष्ठता इसी क्रम के अनुसार मानी जाती थी। अस्तित्व में आने के समय यह व्यवस्था कर्म पर आधारित थी , अतएव इसके बन्धन बहुत दृढ़ नहीं थे। एक वर्ण का विवाह दूसरे वर्ण में हो सकता था। किन्तु धीरे धीरे इसका बन्धन दृढ़ होने लगा। तब एक वर्ण का दूसरे वर्ण में विवाह करना निषिद्ध किया जाने लगा। इस दृष्टि से अनुलोम और प्रतिलोम विवाह अस्तित्व में आये। अनुलोम उसे कहते थे जिसमें वर उच्च वर्ण का और कन्या निम्न वर्ण की होती थी , जैसे, वर ब्राह्मण वर्ण का और कन्या क्षत्रिय

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

PGS National College Of Law

अथवा वैश्य वर्ण की । प्रतिलोम विवाह उसे कहते थे जिसमें वर निम्न वर्ण का होता था और कन्या उच्च वर्ण की , जैसे, वर वैश्य वर्ण का और कन्या क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण वर्ण की। प्रारम्भ में अनुलोम कुछ सीमा तक स्वीकृत था, किन्तु प्रतिलोम को निंदनीय माना जाता था। बाद में चलकर अनुलोम का भी प्रतिषेध कर दिया गया , और वर तथा कन्या का समान वर्ण होना आवश्यक माना गया!

अन्य प्रतिषेध(other prohibitions)

प्रतिषिद्ध सम्बन्ध(Prohibited Relations)

गोत्र और प्रवर-कोई व्यक्ति अपने गोत्र की लड़की से विवाह नहीं कर सकता था। 2 यह नियम शुद्रों पर लागू नहीं होता था क्योंकि उनका कोई गोत्र नहीं होता है। अपने वर्ण के भीतर और अपने गोत्र के बाहर विवाह करने के नियम के कारण ही हिन्दू विवाह को सजातीय (indogamus) और विजातीय (exogamous) दोनों विवाह कहा गया है। गोत्र की भाँति ही समान प्रवर में विवाह करना निषिद्ध था। किन्तु इसके विपरीत , रूढ़ियाँ होने पर ये नियम लागू होते थे । 1946 के केन्द्रीय अधिनियम 28 ने गोत्र और प्रवर के प्रतिबन्ध को समाप्त कर दिया। 3 इस अधिनियम की धारा 2 में यह उपबन्ध किया गया है कि हिन्दू विधि के किसी पाठ , नियम अथवा निर्वचन अथवा किसी रूढ़ि या प्रथा के होते हुये भी हिन्दुओं के बीच कोई विवाह , जो

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

PGS National College Of Law

अन्य प्रकार से वैध है , केवल इस तथ्य के कारण अवैध नहीं हो जायेगा कि विवाह के पक्षकार-

(अ) समान गोत्र अथवा प्रवर के हैं,

(ब) समान वर्ण के भिन्न उपविभागों के हैं।

आयु(Age)

जहां तक विवाह के लिये कन्या की आयु का प्रश्न है , प्राप्तवय होने के पूर्व ही उसका विवाह कर दिया जाता था। आठ से बारह वर्ष के बीच में ही उसका विवाह कर देने का सुझाव दिया गया है। यद्यपि हिन्दू विधि में विवाह के लिये प्राप्तवयता को एक अनिवार्य शर्त के रूप में नहीं रखा गया था , किन्तु प्राप्तवयता के लिये सोलह वर्ष की आयु निर्धारित की गयी थी। इसके बारे में भी मिताक्षरा एवं दायभाग में मतभेद है । मिताक्षरा के अनुसार , सोलह वर्ष का तात्पर्य सोलहवें वर्ष का पूर्ण हो जाना है , जब कि दायभाग के अनुसार सोलह का तात्पर्य पन्द्रहवें का पूर्ण होना एवं सोलहवें का प्रारम्भ होना है।

मध्यकाल में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों से बाल-विवाह होने प्रारम्भ हो गये, और अंग्रेजों के आने तक वही स्थिति बनी रही। अंग्रेजों के आने के बाद भी इसमें कोई सुधार नहीं हुआ। वर्तमान युग में बाल विवाह

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

PGS National College Of Law

को एक भारी सामाजिक कुरीति (social evil) के रूप में माना जाने लगा। समाज सुधार के कार्यों में बाल विवाह को समाप्त करना भी सम्मिलित किया गया। सन् 1929 में सरकार ने इसे रोकने के लिये एक अधिनियम पारित किया जिसका नाम बाल-विवाह अवरोध अधिनियम है। इसे शारदा अधिनियम के नाम से भी जाना जाता है। इसमें विवाह के लिये पुरुष की न्यूनतम आयु 18 और कन्या की न्यूनतम आयु 14 वर्ष निर्धारित की गई थी । इस नियम के अतिक्रमण करने वाले को अधिनियम ने दण्ड का भागी बनाया। सन् 1938 में इस अधिनियम में संशोधन करके कन्या की न्यूनतम आयु 14 से बढ़ाकर 15 वर्ष कर दी गयी। 1978 में संशोधन द्वारा नारी की न्यूनतम आयु 18 वर्ष और पुरुष की न्यूनतम आयु 21 वर्ष कर दी गयी है।5 इस अधिनियम के होने के बावजूद भी व्यवहार में बाल-विवाह होते रहे हैं और विशेषकर निम्न वर्ग के लोगों में। सम्प्रति सामाजिक जागरण एवं शिक्षा के प्रचार के फलस्वरूप अधिक मात्रा में प्राप्तवय विवाह होने लगे हैं।

(3) शारीरिक एवं मानसिक क्षमता

(Physical and Mental Capacity)

PGS National College Of Law

शारीरिक क्षमता(Physical Capacity)

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

हिन्दू विधि

पहले इसका उल्लेख किया जा चुका है कि विवाह करने का अधिकार सभी को थ। यह एक संस्कार था , इसलिये इससे किसी को वंचित नहीं किया गया था। परिणामस्वरूप , प्रारम्भ में शारीरिक रूप से अक्षम , अथात् पुस्तक (impotent) के लिये भी विवाह का निषेध नहीं था। उस समय नियोग की प्रथा प्रचलित होने से पति के नपुंसक होने पर भी सन्तान उत्पन्न कराई जा सकती थी। नियोग का यह तात्पर्य था कि किसी के सन्तानहीन मर जाने पर अथवा उस व्यक्ति के नपुंसक अथवा अन्य किसी कारण से सन्तान उत्पन्न करने में अक्षम होने की दशा में उसकी पत्नी क्रमशः उसके कुल वालों एवं उसकी सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति से सन्तान उत्पन्न करा सकती थी।

मानसिक क्षमता(Mental Capacity)

प्रिवी कौंसिल में विवाह की विधिमान्यता पर विचार किया और यह मत व्यक्त किया कि मानसिक अक्षमता के आधार पर किसी विवाह पर आपत्ति करना उसकी कोटि (degree) के प्रश्न पर निर्भर करता है। इस आधार पर किसी विवाह को अविधिमान्य कर देने के लिये उस अक्षमता की ऐसी कोटि का सिद्ध करने का प्रमाण चाहिये जो विवाह की विधिमान्यता के पक्ष में अतिशय सशक्त उपधारणा (presumption) को खंडित (rebut) कर सके। इस प्रकार इस निर्णय के अनुसार गंभीर कोटि की मानसिक अक्षमता होने की स्थिति में विवाह अविधिमान्य होता था ।

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

हिन्दू विधि

विवाह की रीतियाँ (Forms of Marriage)

मनु ने विवाह की आठ रीतियों का उल्लेख किया है। P0 वे हैं : ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर गान्धर्व, राक्षस और पैशाच।।

आधुनिक काल में केवल ब्राह्मी और असुर दो रीतियों के विवाह प्रचलित रहे हैं। किसी विवाह के बारे में विधि की यह उपधारणा थी कि यह ब्राह्मण रीति से किया गया है। एक दूसरी उपधारणा यह भी है कि जब एक स्त्री और एक पुरुष पत्नी और पति के रूप में रहते पाये जायें तो वे एक दूसरे के साथ विवाहित समझे जाते हैं।

विवाह में संरक्षकता (Guardianship in Marriage)

मिताक्षरा शाखा में निम्नलिखित सम्बन्धी उल्लेख क्रम में विवाह के लिये कन्या के संरक्षक होते थे :

(1) पिता

(2) पितामह

(3) भ्राता

(4) कन्या के पितृवंश अन्य सम्बन्धी (साकुल्य) रक्त सम्बन्ध की निकटता के क्रम में।

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

(5) माता

दायभाग में (रघुनन्दन का मत) निम्नलिखित सम्बन्धी उल्लेख- क्रम में विवाह के लिये कन्या के संरक्षक होते थे

(1) पिता

(2) पितामह

(3) भ्राता

(4) साकुल्य

(5) नाना

(6) मामा

(7) माता

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

हिन्दू विधि

प्र०-2 हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के अनुसार विवाह विच्छेद के क्या -क्या आधार हैं । क्या आपसी सहमति से विवाह -विच्छेद हो सकता है।

2012-(6)

हिन्दू विधि में विवाह-विच्छेद का उपबन्ध प्रथम बार हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 द्वारा किया गया है। प्राचीन हिन्दू विधि के अनुसार हिन्दू विवाह अविच्छेद्य होता था विवाह-विच्छेद किसी भी स्थिति में स्वीकृत और मान्य नहीं था, चाहे भले ही पत्नी घोर अनैतिकता का जीवन व्यतीत कर रही हो , अथवा उसने धर्म-परिवर्तन कर दिया हो, अथवा पति ने पत्नी का अभित्यजन कर दिया हो, इत्यादि । रूढ़ियों के अनुसार कुछ वर्गों के हिन्दुओं में विवाह-विच्छेद प्रचलित था। आधुनिक युग के विकासों और परिवर्तनों को ध्यान में रखकर विवाह-विच्छेद की आवश्यकता गम्भीरता से अनुभव की जाने लगी थी। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 विवाह-विच्छेद का उपबन्ध करती है। आरम्भ में विवाह-विच्छेद के आधार कठोर और अपेक्षाकृत सीमित थे। बाद में संशोधन द्वारा उन्हें नरम और विस्तृत बनाया गया है। 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा यह कार्य विशेष रूप से किया गया है विवाह-विच्छेद के विद्यमान आधारों को नरम बनाया गया है और अनेक नये आधार जोड़े गये हैं। नीचे आधारों का विवेचन करते समय हम इसका उल्लेख में करेंगे। विवाह-विच्छेद और शून्य विवाह अन्तर है।

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

(Sexual intercourse with any person other than his or her spouse)

विवाह के किसी पक्षकार के लिए विवाह-विच्छेद का प्रथम आधार यह है कि दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अपनी पत्नी या अपने पति से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है। यह उपबन्ध 1966 के संशोधन द्वारा रखा गया है। इसके पूर्व यह उपबन्ध था कि दूसरा पक्षकार जारता का जीवन व्यतीत कर रहा है।' उस रूप में यह आधार बड़ा कठोर था। इसमें जारता का नियमित आचरण- और वर्तमान काल में अर्थात् अर्जी फाइल करने के समय भी प्रत्यर्थी का जारता का जीवन व्यतीत करना आवश्यक था। भारतीय विधि आयोग ने इस स्थिति का उल्लेख करते हुए इसे संशोधित करने का सुझाव दिया :

मैथुन से यहां तात्पर्य सम्मति द्वारा मैथुन है जैसा कि 'स्वेच्छया' शब्द स्पष्ट करता है। यदि पत्नी के साथ किसी ने बलात्संग (rape) किया है अथवा उसकी अज्ञानावस्था अथवा अचेतावस्था , में किसी ने मैथुन किया है तो यह विवाह-विच्छेद का आधार नहीं हो सकता है। मैथुन विवाहित , अविवाहित, विधवा, विधुर किसी के भी साथ हो सकता है। ऐसे मैथुन के लिए यह

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

आवश्यक नहीं है कि यह भारतीय दण्ड संहिता की धारा 497 में दी गई परिभाषा के भीतर आता हो ।

प्रत्यर्थी का मैथुन अपनी पत्नी अथवा पति के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति से होना चाहिए, अर्जीदार के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति से नहीं इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति के पास एक से अधिक पत्नियां हैं (हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के पारित होने के पूर्व एक पुरुष अनेक पत्नियां रख सकता था।)

(2) क्रूरता(Cruelty)

विवाह-विच्छेद का दूसरा आधार यह है कि दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का बर्ताव किया है। विवाह-विच्छेद का वह आधार नया है जो संशोधन अधिनियम , 1976 द्वारा जोड़ा गया है।

क्रूरता को विवाह-विच्छेद का एक आधार बनाने की विधि आयोग ने सिफारिश की 2 1976 के संशोधन अधिनियम के पारित होने के पूर्व " क्रूरता" धारा 10 (1) के अधीन न्यायिक पृथक्करण का आधार थी। न्यायिक पृथक्करण के आधार के रूप में "क्रूरता" का उपबन्ध इस प्रकार था :

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

10 (1) विवाह में का कोई भी पक्षकार न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए जिला न्यायालय में इस आधार पर अर्जी उपस्थापित कर सकेगा कि दूसरे पक्षकार ने-

"(ख) अर्जीदार के साथ ऐसी क्रूरता का व्यवहार किया है जिससे अर्जीदार के मन में यह युक्तियुक्त शंका कारित हो गई है कि उसका दूसरे पक्षकार के साथ रहना अर्जीदार के लिए अपहानिकर या क्षतिकर होगा।"

(3) अभित्यजन(Desertion)

अभित्यजन विवाह-विच्छेद का तीसरा आधार है। यह आधार भी 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा धारा 13 में जोड़ा गया है। 1976 के पूर्व अभित्यजन न्यायिक पृथक्करण का आधार था न्यायिक पृथक्करण के आधार के रूप में इसकी अनुपयोगिता को इंगित करते हुए विधि आयोग ने कहा कि

"इस समय अभित्यजन हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण का एक आधार है किन्तु इससे कोई व्यावहारिक अनुतोष प्राप्त नहीं होता है क्योंकि जब एक पक्षकार ने दूसरे का अभित्यजन कर दिया हो तब अभित्यक्त पक्षकार न्यायिक पृथक्करण के दिये जाने से न्यायालय से केवल यह निर्णय प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है कि अभित्यजन करने वाले पक्षकार के अनौचित्यपूर्ण आचरण के कारण ,

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

अभित्यक्त पक्षकार, अभित्यजन करने वाले पक्षकार के साथ सहवास करने के लिए आबद्ध नहीं होगा/होगी।"

इसके विवाह-विच्छेद का आधार बनाए जाने की सिफारिश करते हुए विधि आयोग ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया-

"विवाह के पक्षकारों का मूल कर्त्तव्य एक साथ रहना और दूसरे को ऐसी संवेदनशीलता और ऐसा सहयोग प्रदान करना है जो विवाह के पक्षकारों से अपेक्षित होता है। यदि यह संवेदनशीलता और सहयोग नहीं मिलता है

(1) पति और पत्नी ने सभी प्रकार से सम्मिलित रूप से रहना समाप्त कर दिया है;

(2) अभित्यजन करने वाले पति अथवा पत्नी का दूसरे पक्षकार के अभित्यजन का आशय है;

(3) पति अथवा पत्नी अभित्यजन के लिये सहमत नहीं है;

(4) अभित्यजन बिना किसी कारण के है और

(5) यह स्थिति एक निर्दिष्ट काल तक बनी रही है ।

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

हिन्दू विधि

(4) धर्म-परिवर्तन

(Conversion)

धर्म-परिवर्तन विवाह-विच्छेद का चौथा आधार है। विवाह के एक पक्षकार का हिन्दू धर्म का परिवर्तन कर अन्य धर्म ग्रहण कर लेना दूसरे पक्षकार को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने का अधिकार देता है। यहां हिन्दू से तात्पर्य अधिनियम की धारा 2 में दिये गये हिन्दू की परिभाषा से है जिसमें जैन, बौद्ध, सिक्ख इत्यादि सम्प्रदायों के लोग सम्मिलित हैं। इसलिए इनमें से किसी धर्म को ग्रहण करना धर्म-परिवर्तन के कारण विवाह-विच्छेद का आधार नहीं बन सकता। इनके बाहर के किसी धर्म को ग्रहण करना जैसे मुसलमान अथवा ईसाई इत्यादि धर्म ग्रहण करना ही विवाह-विच्छेद का आधार होगा तथा यह उल्लेखनीय है कि धर्म-परिवर्तन सद्भावना से होना चाहिए। किसी व्यक्ति द्वारा धर्म-परिवर्तन का दिखावा करना अथवा दूसरा धर्म ग्रहण करने की जिसमें बहुविवाह हो सकता है जो एक विवाह के नियम तथा बहुविवाह दाण्डिक परिणामों से बचने के लिए है, अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है।

धर्म विश्वास का विषय है जो हृदय और मस्तिष्क की गहराई से निकलता है। धर्म, विश्वास अथवा निष्ठा सरलता से अदला-बदली किए जाने

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

योग्य नहीं है । यदि एक व्यक्ति केवल कुछ सांसारिक लाभ या फायदा प्राप्त करने के लिए दूसरा धर्म ग्रहण कर लेने का दिखावा करता है तो यह धार्मिक छलावा होगा। इस दृष्टि से देखे जाने पर , यदि कोई व्यक्ति जो दिखावे के तौर पर दूसरा धर्म ग्रहण कर लेता है जहां अनेक विवाह किए जा सकते हैं जिससे विवाह का त्याग दिया जा सके और पत्नी का अभित्यजन किया जा सके उसे इस प्रकार के दुरुपयोग की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि अपना मतलब साधने के लिए उसका दुरुपयोग किया जाए। प्रत्येक स्वीय विधि के अधीन विवाह की प्रथा एक पवित्र प्रणाली है। हिन्दू विवाह में यह एक संस्कार है। दोनों को परिरक्षित किया जाना है।

(5) विकृतचित्त

(Unsoundness of mind)

विवाह-विच्छेद का पांचवां आधार विकृतचित्तता है। जब विवाह का दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृतचित्त रहा है या लगातार या आंतरायिक रूप से इस किस्म के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे तब अर्जीदार विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अर्जी

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

फाइल कर सकता है 1976 के संशोधन के पूर्व विवाह-विच्छेद का आधार होने के लिए विकृतचित्तता का तीन वर्ष की कालावधि तक रहना आवश्यक था। विधि आयोग ने इसे अनुचित माना और इसे समाप्त कर देने की सिफारिश की-

"हम समझते हैं कि विवाह-विच्छेद प्राप्त करने के अधिकार पर अधिरोपित तीन वर्ष की न्यूनतम अवधि की शर्त उचित नहीं। ऐसी चित्त - विकृति , जो असाध्य हो, एक ऐसी स्थिति पैदा कर देती है जिसमें पक्षकारों से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे परस्पर दाम्पत्य जीवन व्यतीत करेंगे और न्यूनतम अवधि पर जोर देना एक तरह से त्याग करने की मांग करना है, जो अनुचित है। अतः न्यूनतम अवधि की यह शर्त हटा दी जानी चाहिए।

(6) कुष्ठ

(Leprosy)

कुष्ठ रोगग्रस्तता विवाह-विच्छेद का छठा आधार है। विवाह के एक पक्षकार का उग्र और असाध्य कुष्ठ रोग से पीड़ित रहना दूसरे पक्षकार को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने का अधिकारी बनाता है। 1976 के संशोधन के पूर्व उग्र और असाध्य कुष्ठ रोग से तीन वर्ष की कालावधि तक पीड़ित रहना

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

विवाह विच्छेद का आधार होता था। 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा उक्त कालावधि को समाप्त कर दिया गया है। अब उक्त प्रकार के कुष्ठ रोग से पीड़ित रहना ही विवाह- विच्छेद का आधार है । विवाह-विच्छेद का आधार होने के लिए कुष्ठ रोग को उग्र और असाध्य दोनों होना चाहिए।

(7) रतिज रोग(Venereal disease)

प्रत्यर्थी का संचारी रूप से रतिज रोग से पीड़ित रहना विवाह-विच्छेद का सातवां आधार है। पूर्वोक्त आधार की भांति ही विवाह-विच्छेद का आधार बनने के लिए पहले रतिज रोग का तीन वर्ष की कालावधि तक रहना आवश्यक था। 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा यह कालावधि समाप्त कर दी गई। रतिज रोग के सम्बन्ध में ऐसी कोई शर्त नहीं दी गई है कि यह प्रत्यर्थी को अर्जीदार के संसर्ग से न हुआ हो तथापि अधिनियम की धारा 23 के आधार पर न्यायालय इस शर्त को लागू कर सकता है।

(8) प्रव्रज्या ग्रहण(Renunciation of world)

विवाह के एक पक्षकार का किसी धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण करना विवाह-विच्छेद का आठवाँ आधार है। किसी व्यक्ति द्वारा प्रव्रज्या-ग्रहण उसकी सिविल मृत्यु मानी जाती है ऐसी स्थिति में दूसरे पक्षकार को उसके साथ

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

विवाह के सम्बन्ध से मुक्त होने का अधिकारी होना चाहिए । प्रत्यर्थी द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण की केवल घोषणा विवाह-विच्छेद का आधार नहीं हो सकती।

(9) प्रत्यर्थी के बारे में न सुना जाना (Respondent not heard of for seven years)

विवाह-विच्छेद का नवां आधार प्रत्यर्थी के बारे में कतिपय कालावधि तक न सुना जाना है। यदि विवाह के एक पक्षकार के बारे में सात वर्ष या इससे अधिक की कालावधि तक उन लोगों द्वारा , जिन्होंने उसके बारे में , यदि वह जीवित होता तो स्वभावत: सुना होता , नहीं सुना गया है कि वह जीवित है , तो दूसरे पक्षकार के लिये यह विवाह-विच्छेद प्राप्त करने का आधार है। वस्तुत: किसी व्यक्ति के बारे में 7 वर्ष तक न सुने जाने से भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के अन्तर्गत उसकी मृत्यु की उपधारणा की जाती है। प्रत्यर्थी की मृत्यु की उपधारणा होने की स्थिति में निश्चय ही अर्जीदार को विवाह के बन्धन से मुक्त हो जाना आवश्यक है। दूसरे, किसी व्यक्ति के सात वर्ष तक पता न चलने पर यह अनुमान किया जाता है कि वह अपने वैवाहिक जीवन को चलाना नहीं चाहता है।

प्र०-3 निम्नलिखित में अंतर कीजिये।

(a) शून्य एवं शून्यकर्निय विवाह

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

हिन्दू विधि

(b) विवाह विच्छेद एवं न्यायिक प्रत्थ्करण

(a)

विवाह की अकृतता जहां विवाह अकृत और शून्य है (Nullity of Marriage where Marriage is Null and Void)

विवाह सम्बन्धी तीसरा अनुतोष विवाह के शून्य होने की दशा में उसके अकृतता की डिक्री प्राप्त करना है। विवाह निम्नलिखित दशाओं में शून्य होता है :

(1) जब कोई व्यक्ति अपनी एक पत्नी अथवा पति के जीवित रहते दूसरा विवाह करता है। पहली पत्नी की सहमति से भी पति द्वारा किया गया विवाह अकृत और शून्य होगा;

(2) जब विवाह प्रतिषिद्ध नातेदारी के भीतर (इस प्रकार के विवाह होने की किसी रूढि के अभाव में) होता है;

(3) जब विवाह सपिण्ड के साथ (इस प्रकार के विवाह होने की किसी रूढ़ि के अभाव में) होता है ।

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

विवाह अधिनियम की धारा 11 में दिये गये इस उपबन्ध के अनुसार विवाह के दोनों पक्षकारों में से किसी भी पक्षकार द्वारा अकृतता की डिक्री के लिए अर्जी दी जा सकती है। विवाह के पक्षकारों के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति विवाह की अकृतता के लिए अर्जी प्रस्तुत करने का अधिकारी नहीं है।

विवाह के अकृत एवं शून्य होने के लिए अकृतता की डिक्री प्राप्त करना अनिवार्य नहीं है। ऐसे विवाह आरम्भतः शून्य (void ab initio) होते हैं। इसलिए अकृतता की डिक्री प्राप्त किए बिना भी ऐसे विवाह में पक्षकारों के कोई विवाहजन्य पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य नहीं होते। शून्य विवाह के पक्षकारों की हैसियत पति और पत्नी की होने से वे एक-दूसरे के जीवित पत्नी और पति नहीं माने जा सकते । इसलिए वे दूसरा विवाह कर सकते हैं।

विवाह की अकृतता की डिक्री के निम्नलिखित परिणाम होते हैं

(1) पक्षकार परस्पर पति-पत्नी नहीं रहते। इसलिए एक के दूसरे से दाय प्राप्त करने इत्यादि के अधिकारी नहीं रहते।

(2) वे तुरन्त ही पुनः विवाह करने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

(3) सन्तानों की औरसता धारा 16 के आधार पर मानी जाती है।

(4) किसी भी पक्षकार को धारा 25 के अधीन दूसरे पक्षकार से स्थायी निर्वाहिका और भरण पोषण प्राप्त हो सकता है।

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

PGS National College Of Law

(4) विवाह की अकृतता जहां विवाह शून्यकरणीय है

(Nullity of Marriage where marriage is voidable)

विवाह के शून्यकरणीय होने की स्थिति में उसकी अकृतता की डिक्री प्राप्त की जा सकती है। विवाह अधिनियम में शून्य और शून्यकरणीय विवाह में अन्तर किया गया है। शून्य और शून्यकरणीय विवाह में यह अन्तर है कि शून्य विवाह आरम्भतः शून्य होता है। इससे पति-पत्नी की हैसियत निर्मित नहीं होती, इसलिए तज्जन्य अधिकार और कर्त्तव्य, जैसे एक की मृत्यु के पश्चात् दूसरे द्वारा दाय ग्रहण , भी अस्तित्व में । नहीं आते। शून्यकरणीय विवाह अकृतता की डिक्री होने तक विधिमान्य रहता है। इस काल में पक्षकारों की पति-पत्नी की हैसियत रहती है , और उनके परस्पर अधिकार तथा कर्त्तव्य होते हैं। शून्य विवाह में अकृतता की डिक्री के बिना भी विवाह शून्य ही रहता है। शून्यकरणीय विवाह अकृतता की डिक्री प्राप्त किये बिना शून्य नहीं हो सकता। विवाह के शून्य होने की स्थिति में शून्यता के प्रश्न पर पक्षकारों के देहावसान के पश्चात् भी विचार किया जा सकता है। शून्यकरणीय विवाह में विवाह की शून्यता का प्रश्न पक्षकारों के देहान्त हो जाने के पश्चात् समाप्त हो जाता है और उस पर विचार नहीं किया जा सकता।

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

हिन्दू विधि

शून्यकरणीय विवाह में, शून्य विवाह की ही भांति, अकृतता की डिक्री के लिये अर्जी विवाह के किसी पक्षकार द्वारा दी जा सकती है जिसके पक्ष में कि इसके आधार हों। किन्तु शून्यकरणीय विवाह का शून्य विवाह से इस बात में अन्तर है कि धारा 11 में विवाह शून्य होने के आधार पर अकृतता की डिक्री केवल विवाह अधिनियम के पारित होने के पश्चात् के विवाहों के सम्बन्ध में ही प्राप्त की जा सकती है , जबकि शून्यकरणीयता के उपबन्ध का प्रभाव भूतलक्षी है , अर्थात् यह अधिनियम के पारित होने के पूर्व के विवाहों के सम्बन्ध में भी लागू होता है। शून्यकरणीय विवाह में अकृतता की डिक्री के लिए अर्जी विवाह के उसी पक्षकार द्वारा दी जा सकती है , धारा 12 में दिए गए आधार जिसके पक्ष में हों , अर्थात् जो पक्षकार पीड़ित अथवा व्यथित हो। शून्यकरणीय विवाह में अकृतता की डिक्री देना न्यायालय के विवेकाधिकार (discretion) पर है। इसलिए शून्यकरणीयता के आधारों के सिद्ध हो जाने पर भी न्यायालय अकृतता की डिक्री नहीं दे सकता है। किन्तु इस सम्बन्ध में वह अधिनियम की धारा 23 में दिये गये नियमों पर चलेगा।

कोई विवाह निम्नलिखित आधारों पर शून्यकरणीय होगा-

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

(क) प्रत्यर्थी की नपुंसकता।

(ख) प्रत्यर्थी की चित्त-विकृति।

(ग) विवाह के लिये बल-प्रयोग अथवा कपट द्वारा अर्जीदार की सम्मति प्राप्त करना।

(घ) प्रत्यर्थी का गर्भवती होना।

(b)

(2) न्यायिक पृथक्करण (Judicial Separation)

विवाह-सम्बन्ध जब तक बना रहता है तब तक विवाह के दोनों पक्षकारों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे एक-दूसरे को साहचर्य दें। किन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियां होती हैं जिसमें एक पक्षकार के लिए यह करना कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था में विधि ने पृथकता की व्यवस्था की है। इसके हो जाने पर जिस पक्षकार ने इसके लिए प्रार्थना की थी वह दूसरे पक्षकार को साहचर्य देने के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

हिन्दू विधि

हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 10, जो न्यायिक पृथक्करण का उपबन्ध करती है, को देखने से यह स्पष्ट होता है कि यह अनुतोष भूतलक्षी है, अर्थात् यह हिन्दू विवाह अधिनियम के पूर्व के हुए विवाहों और अधिनियम के पारित होने के बाद के हुए विवाहों , दोनों पर लागू होता है। यह अनुतोष विवाह के दोनों पक्षकारों को उपलब्ध है। पति और पत्नी दोनों इसके लिए अर्जी प्रस्तुत करने के अधिकारी हैं।

किन कारणों पर न्यायिक पृथक्करण की डिक्री दी जायेगी , इस सम्बन्ध में 1976 के संशोधन अधिनियम के पारित होने के पूर्व धारा 10 में अनेक आधार दिए गए थे। ये आधार साधारणतः विवाह विच्छेद के आधारों के ही समान थे दोनों में मुख्य अन्तर (एक दो आधारों के अनन्य रूप से विवाह विच्छेद का ही आधार होते हुए) यह था कि न्यायिक पृथक्करण के मामले में वे हल्के थे। इसे देखते हुए विधि आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि "चूंकि हम विवाह-विच्छेद के आधारों को अधिक उदार बना रहे हैं और विभिन्न रोगों के सम्बन्ध में इस समय विहित अवधियों को समाप्त कर रहे हैं , इसलिए धारा 10 (1) में न्यायिक पृथक्करण के आधारों का विनिर्दिष्ट उल्लेख आवश्यक नहीं है। यह उपधारा इस प्रकार पुनरीक्षित की जानी चाहिये जिससे कि उसमें धारा 13 (1) में (जो विवाह-विच्छेद से सम्बन्धित है) सम्मिलित आधारों के प्रति निर्देश हो।

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

तदनुसार धारा 10 (1) में यह उपबन्ध किया गया है कि विवाह के पक्षकारों में कोई पक्षकार चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात् जिला न्यायालय को धारा 13 की उपधारा (1) में और पत्नी की दशा में उसकी उपधारा (2) के अधीन विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी ऐसे आधार पर , जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी उपस्थापित (present) की जा सकती थी , न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी उपस्थापित कर सकेगी ।

न्यायिक पृथक्करण की डिक्री अर्जीदार को केवल एक वैवाहिक दायित्व-दूसरे पक्षकार के साथ सहवास-से मुक्त करती है। न्यायिक पृथक्करण का उपबन्ध स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करता है कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री अन्तिम नहीं है और उसे रद्द भी किया जा सकता है। डिक्री का प्रभाव यह है कि कतिपय वैवाहिक अधिकार और दायित्व निलम्बित हो जाते हैं और उसके स्थान पर डिक्री में विहित अधिकार और कर्त्तव्य आ जाते हैं 99 इस प्रकार विवाह-सम्बन्ध कायम रहता है। अतएव , अन्य अधिकार तथा कर्त्तव्य जैसे एक की निर्वसीयती (intestate) मृत्यु पर दूसरे से दाय प्राप्त करना अथवा पुनर्विवाह न करना आदि बने रहते हैं। यदि डिक्री को विखण्डित कराए बिना अर्जीदार और प्रत्यर्थी सहवास प्रारम्भ कर देते हैं तो इसका क्या परिणाम होगा इसके बारे में धारा 10 मौन है। जैसा कि ऊपर कहा गया है , कि

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.

PGS National College Of Law

न्यायिक पृथक्करण से विवाह-सम्बन्ध समाप्त नहीं होगा , इसलिए सहवास कोई विधिविरुद्ध कार्य नहीं होगा यदि इस सहवास से कोई सन्तान उत्पन्न होती है तो वह पूर्णतया औरस होगी। सहवास के आधार पर न्यायिक पृथक्करण की डिक्री को विखण्डित कराया जा सकता है दूसरे सहवास प्रारम्भ हो जाने पर न्यायिक पृथक्करण की डिक्री विवाह-विच्छेद का आधार नहीं बन सकती।

न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के एक वर्ष पश्चात् तक सहवास पुनरारम्भ न करने की दशा में वह विवाह-विच्छेद का आधार हो जायेगी। विवाह का कोई भी पक्षकार (न्यायिक पृथक्करण के वाद में अर्जीदार या प्रत्यर्थी) विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल कर सकता है। वस्तुत: न्यायिक पृथक्करण की डिक्री का मुख्य उपयोग यह है कि वह विवाह के पक्षकारों को एक बार पुन: अपने सम्बन्धों पर विचार करने का अवसर देती है और यदि एक वर्ष के भीतर वे उसमें परिवर्तन नहीं ला सके तो वह उन्हें विवाह विच्छेद द्वारा अन्तिम रूप से पृथक् हो जाने का अधिकार देती है

PGS National College Of Law

Disclaimer: Although all Prevention Measures are being used While making these notes but students are advise, they can consult from subject book.